५६ गाथा है। यह तो गुणस्थानपर्यन्त के भाव गोम्मटसार ग्रन्थ में से देख लेना, ऐसा। **अब शिष्य पूछता है कि—यदि वह वर्णादिक भाव जीव के नहीं हैं...** देखो, यहाँ जड़ की पर्याय से लिया है, हों! जड़ की पर्याय, चेतन की पर्याय और भेद तीनों, ये जीव के नहीं हैं। आहाहा! **तो अन्य सिद्धान्तग्रन्थों में ऐसा कैसे कहा गया है कि 'वे जीव के हैं?' उसका उत्तर गाथारूप में कहते हैं—**

ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया।
गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स।।५६।।

वर्णादि गुणस्थानांत भाव जु, जीव के व्यवहार से।
पर कोई भी ये भाव नहिं हैं, जीव के निश्चयविषैं॥५६॥

आहाहा! **टीका - यहाँ व्यवहारनय पर्यायाश्रित होने से,...** आहाहा! जड़ की पर्याय वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, उसे भी यहाँ से रहित, वह तो रहित है परन्तु उसकी पर्याय में जो गुणस्थान आदि के भेद पड़ते हैं, वे भी पर्यायनय का विषय है। है, पर्यायाश्रित है,

वह है और उसमें लब्धिस्थान आदि के भेद, वे भेद हैं। आहाहा! अर्थात् जड़ की पर्याय, अपनी विकार आदि की अथवा गुणस्थान आदि की पर्याय और लब्धिस्थान आदि के भेद की पर्याय / भेद, ये तीनों पर्यायाश्रित होने से - ऐसा कहते हैं। ये तीनों पर्यायाश्रित हैं। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, संहनन, संस्थान, जड़ की पर्याय, फिर आत्मा की पर्याय में होनेवाले गुणस्थान, जीवस्थान आदि और आत्मा में लब्धिस्थान, चारित्रमोह की प्रकृति की निवृत्तिरूप ये भेद हैं, विकार नहीं। है भेद। भेद, विकारी आदि भेद और निमित्त पर्याय, तीनों पर्यायाश्रित होने से -यहाँ तो ऐसा कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्यायाश्रित का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय कहा न वह, उस जड़ की पर्याय भी पर्यायाश्रित, गुणस्थान भी पर्यायाश्रित है और जो भेद पड़ता है, वह भी पर्यायाश्रित; इसलिए तो तीन लिये। आहाहा! इसलिए आ गया न यह?

यह तो कहते हैं न कि निश्चयनय सिद्ध को होता है, तो यहाँ तो कहते हैं, स्वरूप के आश्रय से जो निश्चय अनुभूति करता है तो निश्चय में वह नहीं। आहाहा! अन्दर भगवान आत्मा चैतन्यज्ञायक... ज्ञायक, क्यों कहा? ऐसे तो वह पारिणामिकभाव है परन्तु पारिणामिकभाव तो परमाणु में भी है, धर्मास्तिकाय में भी है। उनसे भिन्न करने को ज्ञायक, ज्ञायक पारिणामिकभाव ऐसा, जो त्रिकाली ज्ञायक, ध्रुव ज्ञायकभाव। आहाहा! उसका, उसके आश्रय से अनुभव करने पर, उस अनुभूति में वे भेद / पर्याय जीव की और जड़ की, वे तीनों उसमें नहीं आते। आहाहा! ऐसी बात है।

ऐसा अब कहाँ विचारना! बहुत सूक्ष्म बात है। यह चैतन्यज्ञायकभाव की सन्मुखता से अनुभव करने पर, वह निश्चय हुआ। तब वे कहते हैं निश्चय सिद्ध को होता है, नीचे व्यवहार होता है...

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान कहाँ है कि नय हों?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना अधिक अन्तर और उस पुस्तक की स्थानकवासियों ने प्रंशसा की। वह विद्यानन्दजी की ओर से प्रकाशित समयसार, मेरे प्रति ऐसा लेख आया है। वैसे बलभद्र ने प्रकाशित किया है और विद्यानन्दजी का नाम है। विद्यानन्दजी का, ऐसा

कि इस पुस्तक की स्थानकवासियों ने प्रशंसा की, तेरापंथियों ने प्रशंसा की, श्वेताम्बरों ने प्रशंसा की, दिगम्बरों ने प्रशंसा की। अब तुम क्या कहते हो ? अब क्या कहें, तेरी (बात) अत्यन्त विरुद्ध तत्त्व है-वह निश्चयनय सिद्ध को होता है—ऐसा कहा है, व्यवहारनय साधक को होता है - ऐसा कहा है। आहाहा! साधक को व्यवहार ही होता है, बस! कहो, अब ऐसा बड़ा पूर्व-पश्चिम का अन्तर है।

यहाँ तो कहते हैं कि निश्चयनय... ऐसा निश्चयनय है न, पाठ में है न, देखो न! आहाहा! आया न - **ववहारेण दु एदे जीवस्स हवंति वण्णमादीया। गुणठाणंता भावा ण दु केई णिच्छयणयस्स।** ५६ गाथा। तो किसे ? सिद्ध को ? आहाहा! क्योंकि वापस व्यवहार पर्याय में है, वह तो ज्ञानी को भी है। है ? आहाहा! व्यवहार है, वह जाननेयोग्य है और निश्चय है, वह आदरणीय है। आहाहा! इस प्रकार भगवान का स्याद्वाद वचन है। त्रिकाली ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यघन प्रभु! आहाहा! परमपारिणामिकभाव! ऐसा निज द्रव्य। निज द्रव्य कहा न, वहाँ ३२० में - परमपारिणामिकभाव लक्षण ऐसा निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। आहाहा! सकल निरावरण भगवान द्रव्यस्वभाव। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! जगत को... सकल निरावरण द्रव्य ज्ञायकभाव वह अखण्ड एक अविनाशी, अविनश्वर प्रत्यक्ष प्रतिभासमय शुद्धपारिणामिकपरमभावलक्षण ऐसा जो निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ—ऐसा धर्मी अपने आत्मा को ऐसा भाता है। आहाहा!

पर्याय में विकसित खण्ड-खण्ड निर्मल पर्याय हुई है, परन्तु वह खण्ड-खण्ड है। आहाहा! तो निर्मल पर्याय को भी यहाँ भेद में डाल दिया है - लब्धिस्थान आदि। आहाहा! जिसे आत्मा वस्तुस्वरूप अकेला परमानन्द प्रभु, ऐसी दृष्टि करके जहाँ अनुभव करता है तो वह अनुभूति उस निश्चय के आश्रय से हुई है। है ? तो नीचे चौथे से निश्चय है। अब प्रभु क्या करे। अब ऐसे समयसार प्रकाशित करे और सब सम्प्रदायों को ठीक लगे... !

मुमुक्षु : निश्चयनयाश्रित मुनिवरों प्राप्ति करे निर्वाण की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो फिर ऐसा कहे, निश्चयनयाश्रित आगे जाने पर, परन्तु यहाँ तो यह स्वाश्रित निश्चय। यहाँ सिद्ध क्या करना है ? इसलिए निश्चयनय ५६ में पाठ लिया है, तो निश्चयनय कौन सा ? कि जो त्रिकाली ज्ञायकभाव को अवलम्ब कर अनुभव

करे, वह निश्चयनय है। यहाँ तो चौथे से निश्चय शुरु होता है। आहाहा! और आगे आता है न उसमें-स्वाश्रित निश्चय-पराश्रित व्यवहार, तो स्वाश्रित निश्चय सिद्ध को है? अरे प्रभु! तुझे अभी उसकी-वस्तु के स्वरूप की स्थिति है, उसका ज्ञान भी झूठा है। आहाहा!

आहाहा! भगवान आत्मा... यहाँ तो पर्याय को और निश्चयनय को दोनों को सिद्ध किया है। ५६ (गाथा) में। निश्चयनय से इसके नहीं, ऐसा कहा, परन्तु व्यवहारनय से इसे वर्णादि की पर्याय का सम्बन्ध है, व्यवहार से, आहाहा! निमित्त और भेद है, गुणस्थान-जीवस्थान आदि का और लब्धिस्थान आदि भेद है, परन्तु इस अनुभव में वह भेद और पर्याय तथा जड़ की पर्याय आती नहीं। आहाहा! इसलिए अनुभूति से भिन्न (कहा है)। जीवद्रव्य से तो भिन्न है, परन्तु जीवद्रव्य से भिन्न-इसे कब ख्याल में आवे? आहाहा! कि उसका अनुभव करे, सन्मुख होकर (अनुभव करे), तब इसे जीवद्रव्य में... अनुभूति में नहीं तो जीवद्रव्य में नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन होने पर, आहाहा! उस अखण्ड अभेद का दर्शन होने पर उसमें भेद, पर्याय, राग और संहनन की पर्याय है नहीं। आहाहा! परन्तु पर्यायनय से देखें तो... आहाहा! वह यहाँ आया न, यहाँ देखो न टीका! **व्यवहारनय पर्यायाश्रित होने से,...** आहाहा! बहुत अलौकिक बातें हैं, बापू! वीतराग सर्वज्ञपरमेश्वर त्रिलोकनाथ यह कहते हैं, उसे सन्त जगत के लिये प्रसिद्ध करते हैं। आहाहा!

अरे रे! **सफेद रूई से बना हुआ वस्त्र...** है। सफेद रुई का बना हुआ वस्त्र, वह निश्चय, **कुसुम्बी (लाल) रंग से रंगा हुआ है...** आहाहा! आहाहा! दृष्टान्त कैसा दिया है, देखो! यह तो अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है। अन्य (दूसरे लोग) कहते हैं कि अमृतचन्द्राचार्य ने गूढ़ कर दिया, दुरुह कर दिया। यह तो अधिक स्पष्ट कर दिया है। आहाहा!

मुमुक्षु : महापुरुष का अनादर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आचार्य के वचनों का भी अनादर और स्वयं चतुराईवाले, मानो हम इसकी भाषा अर्थ सरल करते हैं। अरे भाई! अरे! दुनिया में अभी अन्याय चलेगा। आहाहा! यह कुदरत के-इसके फल में इसे नहीं चलेगा। कुदरत के फल में, प्रभु! अन्याय नहीं चलेगा। आहाहा! उसका फल-मिथ्यात्व का फल तो निगोद, नरक-निगोद है और स्व आराधना का फल मोक्ष है। बीच में शुभाशुभभाव, वह तो गति का कारण बीच की अवस्था हुई। आहाहा!

भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु... वे १००८ नाम है न (जिन सहस्त्रनाम), उसमें असंख्यात की व्याख्या की है। संख्या असंख्य है, ऐसा नहीं चाहिए। असंख्य का अर्थ किया है असंख्य है। वास्तव में संख्यारहित है अर्थात् असंख्य वे भगवान हैं, ऐसा चाहिए। जहाँ अनन्त-अनन्त की संख्या भी जहाँ अनन्त नहीं परन्तु उसे जहाँ लागू नहीं पड़ती, असंख्य अर्थात् असंख्यात कहा है-उसमें ऐसा लिखा है, भगवान के १००८ (नाम) इन्द्र ने बोले, परन्तु इन्द्र का अर्थ यह है। प्रभु! आप तो असंख्य हो। आत्मा में संख्यारहित गुण हैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त.. वे संख्या से भी पार हैं। आहाहा! आहाहा! यह तो उसे पढ़ते हुए पढ़ने में आया था। इन्द्र एकावतारी समकिती है, वह भगवान के गुण (स्तवन) करता है। १००८। है ? आहाहा! तथापि वे गुण के भेद पर्यायनय का विषय है।

वह **व्यवहारनय पर्यायाश्रित होने से, सफेद रूई से बना हुआ...** आहाहा! मेरे प्रभु! यह तो मार्ग अन्दर, आहाहा! भगवान श्वेत निर्मलानन्द प्रभु, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसका-अभेद का अनुभव, वह निर्मल का अनुभव है और उसमें जैसे वस्त्र कुसुम्बी रंग से रंगा हुआ है, वैसे भगवान आत्मा की पर्याय में भेद, पर्याय और राग की पर्याय तथा पर की पर्याय... आहाहा! वह सब श्वेत-चैतन्यमूर्ति भगवान में यह रंग, कुसुम्बी रंग की भाँति यह व्यवहार है। आहाहा!

सफेद रूई से बना हुआ वस्त्र... कितना स्पष्ट किया है। अब इसे कहते हैं दुरुह किया है कहो, आहाहा! ऐसा दृष्टान्त दिया है भाई! जैसे वस्त्र है, रुई का बना हुआ है, वह सफेद है। आहाहा! परन्तु उसे कुसुम्बी (लाल) का रंग लगता है। वह रंगी हुई दशा तो पर व्यवहार की-पर्याय की है। आहाहा! और वह भी **वस्त्र के औपाधिक भाव...** आहाहा! प्रभु! वस्त्र सफेद है, उसमें लाल रंग का वह उपाधि भाव है। आहाहा! **औपाधिक भाव (लाल रंग) की भाँति,...** आहाहा! यहाँ तो उपाधि भाव लागू करेंगे। भेद, पर्याय (है), इसलिए यहाँ... आहाहा! जैसे वस्त्र सफेद है, उसे लाल रंग की उपाधि के भाव के कारण... आहाहा! **पुद्गल के संयोगवश...** आहाहा! भगवान आत्मा को पुद्गलद्रव्य के संयोगवश **अनादिकाल से...** यह क्या है ? पुद्गलद्रव्य के संयोग के कारण-ऐसा नहीं लिया। उसके संयोग के वश भेद उत्पन्न हुआ। आहाहा! आहाहा!

भगवान! जैसे वस्त्र सफेद रुई का बना हुआ। आहाहा! रुई का ऐसा एक दूसरी प्रकार का आता है न कुछ विलायती। भाई लाये थे न, शान्तिभाई लाये थे। शान्तिभाई का पुत्र लाया था। ढाई सौ रुपये का एक था। गद्दा-गद्दा, ढाई सौ रुपये का एक परन्तु वह दूसरे प्रकार का कुछ कहलाता है, रुई नहीं, ऐसे प्रकार का आता है। पोचा... पोचा... पोचा... ऐसे ढाई सौ रुपये का। (उसने कहा) लो महाराज! मैंने कहा - हम ऐसा नहीं लेते। एक ओर लाल तथा एक ओर सफेद ऐसा कोमल रेशम जैसा, ढाई सौ रुपये का था। शान्तिभाई, इनके छोटे भाई का लड़का वह निरंजन लाया था, बड़ा, मैंने कहा यह क्या, यहाँ हमें क्या करना। ऐसा अन्दर सफेद या दूसरे प्रकार का कुछ जैसी रुई आती है वैसा कुछ दूसरा नाम आता है। हैं? रबड़ नहीं, दूसरा नाम आता है। (श्रोता : आकोलिया नुं आवे छे) रेशम। दूसरा कुछ, कुछ दूसरा बोलते थे परन्तु याद नहीं आता कि उसे अमुक कहना। लड़का कहता था अन्दर की सफेदाई एकदम सफेद। दूसरा प्रकार हो, यह नहीं।

इसी प्रकार इसे रंग लगाया है, कहते हैं कि वह तो उपाधि है। आहाहा! उस **औपाधिक भाव (लाल रंग) की भाँति, पुद्गल के संयोगवश...** भगवान अभेद चिदानन्द प्रभु, वह संयोग के वश **अनादि काल से जिसकी बंधपर्याय प्रसिद्ध है...** बंधपर्याय-सम्बन्ध में आयी हुई दशा-प्रसिद्ध है। **ऐसे जीव के औपाधिक भाव (वर्णादिक) का अवलम्बन लेकर...** जीव के... आहाहा! जैसे उस रुई को कुसुम्बी रंग की उपाधि है। आहाहा! यहाँ दूसरा कहना है कि रुई में उस रंग की योग्यता पर्याय में है, कोई रंग चढ़ता है, वह उसकी योग्यता नहीं और चढ़ जाता है - ऐसा नहीं है। योग्यता है। इसी प्रकार जीव की पर्याय में निमित्त के वश होने की योग्यता है। आहाहा! **ऐसे जीव के औपाधिक भाव...** आहाहा! जीव के औपाधिक भाव (वर्णादि) **का अवलम्बन लेकर...** अब उपाधि के तीन प्रकार लिये। (१) शरीर संहनन की जो अवस्था, वह औपाधिक भाव है। आहाहा! (२) गुणस्थान और जीवस्थान, रागादिक भाव भी औपाधिक भाव है और (३) उसमें भेदभाव जो लब्धिस्थान आदि, वह उपाधि। ऐसा भेदभाव हुआ न? तीनों को डाला है न यह! आहाहा!

भगवान आत्मा निर्मलानन्द होने पर भी, जो सम्यग्दर्शन का विषय अभेद ज्ञायकभाव

होने पर भी, उसे कर्म के संयोग के वश वह जड़ की पर्याय; भेद की, गुणस्थान आदि की; और भेद की, यह सब उपाधि है, कहते हैं। आहाहा! उस **औपाधिक भाव (वर्णादिक) का अवलम्बन लेकर प्रवर्तमान होता हुआ,...** आहाहा! ये संयम के लब्धिस्थान, परन्तु भेद के वश, भेद पड़ा न? ऐसा कहते हैं। भले ही वह इसकी योग्यता से है परन्तु संयोग के वश भेद पड़ा है। अभेद में भेद पड़ा, वह संयोग के वश से है। आहाहा! ऐसी बातें! वीतराग ऐसा कहते हैं कि **(वह व्यवहारनय) दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है,...** यह जड़ की पर्याय, राग की पर्याय, गुणस्थान की पर्याय और लब्धिस्थान के भेद, ये दूसरे के हैं-ऐसा कहते हैं। आहाहा! **दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है,...** आहाहा! वे हैं दूसरे के भाव, यह जीव का कहता है। आहाहा! इसे (जीव को) शरीर है और संहनन है, संस्थान है, इसे राग है, गुणस्थान भेद है, लब्धिस्थान के भेद हैं। आहाहा! देखो तो सही! कितना स्पष्ट कर दिया है, रुई का दृष्टान्त देकर (बहुत स्पष्ट कर दिया है)। आहाहा!

भगवान आत्मा अन्दर ज्ञायकस्वभाव से भरपूर प्रभु का अनुभव होने पर ये भेदभाव, गुणस्थान और राग तथा संहनन उस पर्याय में नहीं आते। इसलिए उन्हें जीवद्रव्य से-अनुभूति से भिन्न कहा गया है। आहाहा! **(व्यवहारनय) दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है, और निश्चयनय...** देखो, यह आया भाई! वे कहते हैं निश्चयनय सिद्ध को होता है। आहाहा! अब यहाँ है-यह पुकार तो यहाँ से करते हैं। आहाहा! क्या हो? विद्यानन्दजी, दस दस -बीस बीस हजार लोग सभा में होते हैं। ओहोहो! दिगम्बर लोग सुनते हैं, कुछ पता नहीं होता, यह वाँचनकार ऐसा कोई निकला तो उसमें क्या हुआ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं प्रभु! **निश्चयनय द्रव्याश्रित होने से,...** यह किसे हुआ? चौथे गुणस्थान से हुआ। निश्चय यहाँ है, यह तो वहाँ से 'व्यवहारोअभुयत्थो' कहा। उसे ही छट्ठी गाथा में कहा (कि) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। वह भी सम्यग्दृष्टि अथवा मुनि को ज्ञायकभाव, वह निश्चय एक है; भेद है, वह व्यवहारनय। आहाहा! जैसे रुई में रंग चढ़ता है, रंग के वश जो रंग होता है, वह व्यवहारनय का औपाधिक भाव है; इसी प्रकार भगवान आत्मा में कर्म के निमित्त की योग्यता के सम्बन्ध में संयोग के वश से होते जो कोई पर्याय में भेद वर्तते हैं-गुण अथवा संयम की भेद दशा वर्तती है, अरे! समकित के पाँच भेद की ऐसी भेददशा,

आहाहा! अरे! ज्ञान के पाँच भेद, जो मति-श्रुत आदि, आहाहा! वे सब निमित्त के वश से सब भेद कहे गये हैं। मार्गणा में आ गया है न? मार्गणा है। आहाहा! भगवान आत्मा में वे मार्गणास्थान नहीं है। कहो, समकित के प्रकार क्षायिक, उपशम, क्षयोपशम और मिथ्यात्व सब भेद वे उसमें नहीं हैं। आहाहा! क्योंकि भेद पड़ते हैं, वे सब निमित्त के वश से भेद जानने में आते हैं। वस्तु के वश वे भेद हैं ही नहीं। आहाहा! सम्यग्दर्शन में त्रिकाली ज्ञायक के वश जो अनुभव हुआ, उस स्वद्रव्य के आश्रय से वह निश्चयनय है। अरे! इतना सब अन्तर!

पुस्तक, फिर आज कहा—अपने पुस्तकों का अंक (पुष्प क्रमांक) कितना हुआ है? इसमें १३४ आया है, इसमें बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) १३४। फिर भाई ने कहा कि १४१, १५०-१५० नम्बर की पुस्तकें, नम्बर, हों! आहाहा! बहुत पुस्तकें हो गयी। उसमें यह अन्तिम बहिन की आयी है, यह तो एकदम उत्कृष्ट आयी है, उत्कृष्ट, आहाहा! वस्तुस्थिति एकदम संक्षिप्त में संग्रह होकर, वस्तुस्थिति...

यहाँ कहते हैं कि **निश्चयनय...** देखो! इसमें ही आया। यह **द्रव्याश्रित होने से, केवल एक जीव के स्वाभाविक भाव का अवलम्बन लेकर प्रवर्तमान होता हुआ,...** देखा? आहाहा! ज्ञायक जो चिदानन्द परम पारिणामिकस्वभावभाव, उसके आश्रय से प्रवर्तमान होने से आहाहा! (उसे) **अवलम्बन लेकर प्रवर्तमान होता हुआ,...** देखा? आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव को अवलम्बन कर प्रवर्तमान होने से आहाहा! **दूसरे के भाव को किंचित्मात्र भी दूसरे का नहीं कहता,...** ये गुणस्थान, वर्ण, गंध, रस, रागादि, दया, दान आदि के विकल्प व्यवहाररत्नत्रय, आहाहा! इन दूसरे के भाव को वह दूसरे का नहीं कहता। आहाहा! व्यवहारनय दूसरे के भाव को दूसरे का कहता है। जैसे रंग भाव को वस्त्र का है, ऐसा कहता है; इसी प्रकार व्यवहारनय गुणस्थान, राग और भेद जीव का है-ऐसा व्यवहारनय कहता है। आहाहा!

निश्चयनय... यथार्थ दृष्टि का विषय, वह निश्चय। आहाहा! वह **दूसरे के भाव को किंचित्मात्र भी दूसरे का नहीं कहता,...** किंचित् भी, यह भेद पड़ा न! भेद-लब्धिस्थान और क्षायिकभाव भी जीव का नहीं है। ले! आहाहा! वहाँ इतनी निमित्त के अभाव की अपेक्षा आयी न? आहाहा! यह क्षायिकभाव, उपशमभाव, क्षयोपशमभाव भी

जीव में नहीं है, वह तो पर्याय में है। आहाहा! आहाहा! ऐसा **दूसरे के भाव को...** आहाहा! पर्याय का भाव वह व्यवहारनय का-विषय का दूसरा भाव। आहाहा! उसे आत्मा का वह (निश्चयनय) नहीं कहता। ऐसी बात है। थोड़ा परन्तु सत्य होना चाहिये। बड़ी लम्बी-लम्बी बातें और बड़े... आहाहा! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसे रुई से बना हुआ वस्त्र सफेद है, उसे रंग का उपाधिभाव, वह उपाधिभाव है, वह व्यवहारभाव है। सफेद है, वह निश्चयभाव है, वह (रंग) व्यवहारभाव है। इसी प्रकार आत्मा में ज्ञायकस्वभाव का जो अनुभव होना, वह स्वद्रव्य के आश्रित अपना भाव है, और उसमें भेद—संयमलब्धि के भेद, राग और गुणस्थान के भेद—वे दूसरे के भाव हैं। यह व्यवहार दूसरे को आत्मा में है, ऐसा कहता है। आहाहा! यहाँ ऐसी बात है। एक-एक श्लोक समयसार! आहाहा!! शान्ति से गम्भीर भाव को इसे समझना पड़ेगा। आहाहा!

जैसे यह सफेद रुई का बना हुआ वस्त्र, उसे रंग का भाव, वह तो उपाधि है; इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! स्वद्रव्य के आश्रय से ही निर्मल अनुभूति हो, उसमें यह भाव इसके हैं, ऐसा कहना वह व्यवहार का भाव निश्चय में डाले, वह खोटा है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बात है, भाई! यह तो वस्तुस्थिति है। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन, स्वद्रव्य के आश्रित होनेवाली दशा, यह निश्चय के आश्रय से होनेवाली दशा, उस दशा में यह भेद और गुणस्थान आदि हैं नहीं, क्योंकि वे सब व्यवहार भाव पर के हैं। आहाहा! स्वचैतन्य के-अभेद के वे भाव नहीं हैं। वे अभेद के भाव नहीं हैं। आहाहा! भगवान आत्मा, ज्ञायकस्वभाव के अभेद के अनुभव में... आहाहा! वे भाव उसमें नहीं आते, अभेद में भेद नहीं आता। अभेद में राग नहीं आता, अभेद में गुणस्थान के और जीवस्थान के भेद भी नहीं आते। आहाहा! इसलिए निश्चयनय पर के भाव पर में नहीं कहता - आत्मा में है - ऐसा नहीं कहता। व्यवहारनय, भेदभाव पर के हैं, वे (उन्हें) जीव के हैं - ऐसा कहता है। आहाहा! यह तो दूसरा हीरे का धन्धा है। आहाहा!

मुमुक्षु : यह ज्ञानी और अज्ञानी के भेद की बात है। चैतन्यहीरा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : चैतन्यहीरा, आहाहा! जो त्रिकाल परमस्वभावभाव, उसके आश्रय

से होनेवाली दशा, वह निश्चय के आश्रय से हुई है। आहाहा! उसका नाम सम्यग्दर्शन है। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में स्व का आश्रय है, पर के भेद उसमें नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। इसकी एक-एक गाथा (अपूर्व है)!

जैसे, रुई को रंग लगाया तो रंग की योग्यता तो उसकी है न? आहाहा! इतना सिद्ध करना है। आहाहा! इसी प्रकार पर्याय में भेद की योग्यता-गुणस्थान की योग्यता निमित्त के वश से है, निमित्त के वश होने की स्वयं की योग्यता है। आहाहा! हीराभाई! यह सब तुम्हारे पैसे-वैसे में कुछ हाथ आवे ऐसा नहीं है उसमें कहीं! आहाहा!

मुमुक्षु : हमारे पैसे को तो आप धूल कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पैसेवाले हैं न? आहाहा! आहाहा! मेरा नाथ चैतन्यस्वरूप (है) कहते हैं। आहाहा! वह तो उज्ज्वल निर्मलानन्द प्रभु, आहाहा! उस निर्मलानन्द का अनुभव होने पर उस अनुभव में वे भेद और राग तथा निमित्त नहीं आते। इसलिए वे जीव के नहीं हैं। आहाहा!

यह तो निश्चय चौथे से शुरु किया। अब वे कहते हैं कि निश्चय सिद्ध को होता है। अरे प्रभु! यह तूने क्या किया? इस समयसार के अर्थ करके गजब कर डाला, भाई! आहाहा! लोग सभा भरे, लोगों (से सभा) भरे, विद्यानन्दजी! ऐसे दस-दस हजार लोग (सभा में) भरें। दिगम्बर के लोग, परन्तु बेचारे बिना खबर के, बाहर की बातें सुन-सुनकर बस प्रसन्न-प्रसन्न हो जायें। पूरा विपरीत तत्त्व है वह। जैनदर्शन से अत्यन्त उल्टा है। कि व्यवहार सिद्ध को नहीं होता, सिद्ध को निश्चय होता है, व्यवहार तो साधक को ही होता है। ऐसी पुस्तकें प्रकाशित करे और सब प्रशंसा करे, अरे! जगमोहनलालजी ने भाई प्रशंसा की। अब यह तो बहुत अच्छा प्रकाशित किया। भाई! (ऐसा वे कहते हैं)। अकेला जहर है। ऐई! ऐसी बात है प्रभु! क्या हो? अरे! भगवान का विरह प्रभु! और ऐसी बातें जैनधर्म में चले और सुननेवाले भी बेचारे ऐसे बिना ठिकाने के। आहाहा!

मुमुक्षु : भोले हैं न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भोले, तुम्हें कहते हैं भोले। आहाहा! क्या स्पष्टीकरण तो देखो! ५६ गाथा! आहाहा!

आहाहा! भगवान आत्मा तो ज्ञानानन्द सहजात्मस्वरूप पूर्ण ज्ञायकभाव है और उसके आश्रय से होनेवाली सम्यग्दर्शन दशा वह उसकी, वह अभेद में अभेद की दृष्टि हो, वह उसकी, तथापि वह दृष्टि पर्याय है, वह अभेद में नहीं है। आहाहा! पर्याय का विषय अभेद है, सम्यग्दर्शन की पर्याय का विषय अभेद है परन्तु अभेद में पर्याय नहीं है, अकेला द्रव्य ज्ञायक शुद्ध चैतन्य है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दर्शन हुआ, वह त्रिकाली द्रव्य अभेद के आश्रय से हुआ है; इसलिए वह निश्चय के आश्रय से हुआ। उसमें पर्यायाश्रित जो व्यवहार है, ऐसे रंग की उपाधि वह सब उपाधिभाव है, भेद उपाधि, राग उपाधि। आहाहा!

मुमुक्षु : निमित्त उपाधि।

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त तो कहीं रह गया। संहनन की पर्याय। आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो मुश्किल पड़े ऐसा है। वीतराग तीन लोक के नाथ जिनेश्वर की यह पुकार है। अरे! जगत को सुनने मिलता नहीं, वह कहाँ जाये, क्या हो? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **दूसरे के भाव को किंचित्मात्र भी दूसरे का नहीं कहता,...** कौन? निश्चयनय। निश्चयनय अर्थात् स्वज्ञायकभाव के आश्रय से हुई दशा, उस दशा का विषय अभेद है, वह निश्चयनय अभेद को वर्णन करता है और उसमें दूसरे का अर्थात् पर्याय का भेद, वह दूसरे का भाव है। वह दूसरे के (अर्थात्) आत्मा के हैं, ऐसा नहीं कहता। आहाहा! और गुणस्थान आदि के भेद, पर्यायनय के आश्रित, पर के आश्रित होने से वे भेद व्यवहारनय से जीव के हैं—ऐसा पर्याय के भेद को कहता है। आहाहा! उसमें ऐसा भी सिद्ध रखा कि पर्याय का भेद है, वह वस्तु है। वह व्यवहारनय का विषय है। है; नहीं - ऐसा नहीं। वेदान्त की भाँति पर्याय है ही नहीं, ऐसा यहाँ नहीं है। आहाहा! वेदान्त को और इस वस्तु को तो पूर्व-पश्चिम जितना अन्तर है। लोग यहाँ का कितना ही ऐसा जानकर कहते हैं यह तो वेदान्त जैसा है। अरे! वेदान्त नहीं। सुन, न! इसमें तो गुणस्थान भेद आदि व्यवहारनय से है, वह पर्याय है। आहाहा! वह जाननेयोग्य है, अस्ति है। आदरणीय नहीं। आहाहा! गुणस्थान के भेद, जीवस्थान के भेद, संयमलब्धिस्थान के भेद हैं। आहाहा! है, उन्हें जानना चाहिए। है, ऐसा जानना, बस! यह त्रिकाली भगवान के अवलम्बन से होती

दशा, यह त्रिकाली है, उसके आश्रय से जो दशा, उसे निश्चय कहते हैं। वह निश्चय पर के भाव को अपना नहीं कहता। आहाहा! ऐसी वस्तु है। ओहोहो!

दूसरे के भाव को किंचित्मात्र भी दूसरे का नहीं कहता, निषेध करता है। आहाहा! निश्चयभगवान आत्मा, पूर्णानन्द का नाथ परमज्ञायकभाव की दृष्टि होने पर, उसका अनुभव होने पर... आहाहा! वह पर्याय का निषेध करता है, वह भेद का निषेध करता है। आहाहा! उसमें आता है न कि, भाई! प्रमाण जो है... यह निश्चय है, वह व्यवहार का निषेध करता है और व्यवहार है, उसे भी जानता है, दोनों को (जानता है) तो प्रमाण होता है। प्रमाण में निश्चय का विषय है, पर का निषेध, वह भी आया और वर्तमान है, वह भी आया; इसलिए प्रमाण है, वह सदभूतव्यवहारनय का विषय हो गया। इसलिए वह पूज्य नहीं है। जिसमें पर्याय का निषेध न आवे... आहाहा! वह पूज्य नहीं है। निश्चय में तो यह 'निषेध' शब्द आया न? आहाहा! इसमें पर्याय का निषेध आता है; इसलिए निश्चयनय पूज्य है। आहाहा!

ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य साधु-दिगम्बर सन्त, अकेले नय के सागर भरे हैं। आहाहा! **इसलिए वर्ण से लेकर...** आया था न? वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श, काला-नीला-पीला, यह पर्याय ली थी (वर्ण से) **लेकर गुणस्थान पर्यन्त...** अन्तिम, लब्धिस्थान और ये सब आ गये। **जो भाव हैं वे...** जो भाव हैं। है; ब्रह्मसत्य और जगत्मिथ्या, ऐसा नहीं है। वेदान्त तो ऐसा कहता है न कि आत्मा। बस, बाकी यह सब है नहीं। ऐसा नहीं है। है, आहाहा! **वे व्यवहारनय से...** व्यवहार से, **जीव के हैं...** पर्यायनय के भेद व्यवहार से व्यवहार का विषय है, उस व्यवहार से इसके कहे जाते हैं। आहाहा! **और निश्चयनय से जीव के नहीं हैं...** त्रिकाली वस्तु की अनुभूति में नहीं हैं। वे त्रिकाली में नहीं, परन्तु उस त्रिकाली में नहीं, कब? उसमें नहीं, ऐसा यहाँ ज्ञान हो, उसे उसमें नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

निश्चयनय से जीव के नहीं हैं ऐसा (भगवान का स्याद्वादयुक्त) कथन योग्य है। लो, ठीक! आहाहा! **वर्णादयो गुणस्थानान्ता भावा जीवस्य सन्ति निश्चयेन तु न सन्तीति युक्ता प्रज्ञप्तिः।** यह युक्त है, ऐसा कहते हैं स्याद्वाद की अपेक्षा से। आहाहा!

कथंचित् निश्चयनय में ये नहीं, कथंचित् व्यवहारनय में ये हैं। कथंचित् का अर्थ-उस नय की अपेक्षा से। बाकी वास्तव में तो निश्चय में ये हैं ही नहीं परन्तु व्यवहारनय से ये हैं। यहाँ कथंचित् है और कथंचित् नहीं, ऐसा भी नहीं। यह तो जीव की अथवा दोनों की अपेक्षा से निश्चय और व्यवहार दोनों की अपेक्षा से, निश्चय में नहीं और व्यवहार में है। उसके दो भाग करने पर कथंचित् निश्चय में नहीं, यह भाग करने पर... निश्चय में नहीं तो सर्वथा नहीं, परन्तु जीव की द्रव्य और पर्याय दोनों को शामिल लेकर बात करने पर निश्चय में नहीं, पर्याय में है।

जैसे निश्चय से आत्मा नित्य है, पर्याय से अनित्य है, यह पूरे द्रव्य की अपेक्षा से कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है, परन्तु नित्य है, वह कथंचित् नित्य है - ऐसा नहीं है। नित्य है, वह तो सर्वथा नित्य ही है परन्तु सम्पूर्ण द्रव्य की जहाँ बात करे, कथंचित् नित्य है, कथंचित् अनित्य है, यह तो पूरी वस्तु का वर्णन किया। आहाहा! परन्तु जब इसे नित्य कहना हो तो वह नित्य तो निश्चय से ही नित्य है। कथंचित् नित्य है, ऐसा नहीं और पर्याय है वह सर्वथा अनित्य ही है। आहाहा! परन्तु पूर्ण द्रव्य और पर्याय दोनों को शामिल लेकर कहना हो तो निश्चयनय के विषय में वे हैं ही नहीं-एक भाग; उसके जीव में निश्चयनय से उसमें वे नहीं हैं, उसकी पर्याय में हैं। जीव के उसके दो भाग किये इसलिए। आहाहा! अब ऐसा कहाँ, लोगों को निवृत्ति! पूरे जीव की अपेक्षा से कथंचित् निश्चय में वे नहीं। पूरे द्रव्य और पर्याय की अपेक्षा से; कथंचित् व्यवहार में है परन्तु निश्चय में सर्वथा नहीं; पर्याय में सर्वथा भेद है, वह पर्याय है। आहाहा! ऐसी बात है। समझ में आया?

ऐसा भगवान का स्याद्वादवाला कथन है। आहाहा! ऐसी बात सुनना कठिन पड़ती है। सुनने को मिलती नहीं। अरे! आहाहा! लो, इतना हुआ। पचास मिनिट हुए।

मुमुक्षु : दस बाकी रहे न!

पूज्य गुरुदेवश्री : अब नौ मिनिट बाकी है परन्तु इसमें सब आ गया। आहाहा! इसमें -पाठ में तो इतना ही है कि '**ववहारेण दु एदे**' '**जीवस्स हवंति णिच्छयणयस्स ण**' है न? परन्तु इसका दृष्टान्त देकर सिद्ध किया, इसलिए लोगों को ख्याल में आवे कि रुई का बना

हुआ वस्त्र, वैसे भगवान तो परम ज्ञायक का बना हुआ आत्मा है। ज्ञायकभाव से रहा हुआ आत्मा है, वह तो ज्ञायक त्रिकाल... त्रिकाल... त्रिकाल... वह सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! ऐसे भाव से रहा हुआ प्रभु, वह निश्चय, उसे पर्याय के भेद उसमें नहीं हैं।

जीव में कथंचित् नहीं अर्थात् क्या? निश्चय में नहीं और कथंचित् है अर्थात् व्यवहार में है - ऐसा कथंचित्; परन्तु निश्चय में भी कथंचित् है और कथंचित् नहीं-ऐसा नहीं है। आहाहा! भाई! समझ में आया? शशीभाई! पूरे जीव को द्रव्य और पर्याय दोनों का वर्णन हो तो कथंचित् निश्चय में नहीं, द्रव्य में; दोनों की अपेक्षा से और कथंचित् व्यवहार में है परन्तु अकेले नय की जब बात करे। आहाहा! तो निश्चय में सर्वथा भेद नहीं और पर्याय सर्वथा भेदवाली तथा रागवाली है। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : मर्मी हो, (वह) ऐसे मर्म को कहता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! ऐसी बातें हैं। बहुत सरस गाथा आयी।

गाथा ५७

कुतो जीवस्य वर्णादयो निश्चयेन न संतीति चेत्–

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा।।५७।।

एतैश्च सम्बन्धो यथैव क्षीरोदकं ज्ञातव्यः।
न च भवंति तस्य तानि तूपयोगगुणाधिको यस्मात्।।

यथा खलु सलिलमिश्रितस्य क्षीरस्य सलिलेन सह परस्परावगाहलक्षणो संबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतक्षीरत्वगुणव्याप्यतया सलिलादधिकत्वेन प्रतीयमानत्वादग्नेरुष्ण–गुणेनेव सह तादात्म्यलक्षणसंबंधाभावात् न निश्चयेन सलिलमस्ति तथा वर्णादिपुद्गल–द्रव्यपरिणाममिश्रितस्यास्यात्मनः पुद्गलद्रव्येण सह परस्परावगाहलक्षणे संबंधे सत्यपि स्वलक्षणभूतोपयोगगुणव्याप्यतया सर्वद्रव्येभ्योऽधिकत्वेन प्रतीयमानत्वादग्नेरुष्णगुणेनेव सह तादात्म्यलक्षणसम्बन्धाभावात् न निश्चयेन वर्णादिपुद्गलपरिणामाः सन्ति।

अब शिष्य पूछता है कि वर्णादिक निश्चय से जीव के क्यों नहीं हैं ? इसका कारण कहिये। इसका उत्तर गाथारूप से कहते हैं—

इन भाव से संबंध जीव का, क्षीर जलवत् जानना।
उपयोग गुण से अधिक, तिससे भाव कोई न जीव का।।५७।।

गाथार्थ - [एतैः च सम्बन्धः] इन वर्णादिक भावों के साथ जीव का सम्बन्ध [क्षीरोदकं यथा एव] दूध और पानी का एकक्षेत्रावगाहरूप संयोगसम्बन्ध है, ऐसा [ज्ञातव्यः] जानना [च] और [तानि] वे [तस्य तु न भवंति] उस जीव के नहीं हैं [यस्मात्] क्योंकि जीव [उपयोगगुणाधिकः] उनसे उपयोगगुण से अधिक है (-वह उपयोग गुण के द्वारा भिन्न ज्ञात होता है)।

टीका - जैसे जलमिश्रित दूध का, जल के साथ परस्पर अवगाहस्वरूप सम्बन्ध होने पर भी, स्वलक्षणभूत दुग्धत्व-गुण के द्वारा व्याप्त होने से दूध जल से अधिकपने से प्रतीत होता है; इसलिए, जैसा अग्नि का उष्णता के साथ तादात्म्यस्वरूप सम्बन्ध है, वैसा जल के साथ दूध का सम्बन्ध न होने से, निश्चय से जल दूध का नहीं है; इस प्रकार वर्णादिक पुद्गलद्रव्य के परिणामों के साथ मिश्रित इस आत्मा का, पुद्गलद्रव्य के साथ परस्पर अवगाहस्वरूप सम्बन्ध होने पर भी, स्वलक्षणभूत उपयोगगुण के द्वारा व्याप्त होने से आत्मा सर्व द्रव्यों से अधिकपने से (-परिपूर्णपने से) प्रतीत होता है; इसलिए जैसा अग्नि का उष्णता के साथ तादात्म्यस्वरूप सम्बन्ध है, वैसा वर्णादि के साथ आत्मा का सम्बन्ध नहीं है, इसलिए निश्चय से वर्णादिक पुद्गलपरिणाम आत्मा के नहीं हैं।

गाथा - ५७ पर प्रवचन

अब शिष्य पूछता है कि वर्णादिक निश्चय से जीव के क्यों नहीं हैं ? आहाहा! यह वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्श-गुणस्थान-लब्धि के भेद, ये जीव के क्यों नहीं ? **इसका कारण कहिये।** आहाहा! संस्कृत है **कुतो जीवस्य वर्णादयो निश्चयेन न संतीति चेत्-** अमृतचन्द्राचार्य की स्वयं की है।

एदेहिं य सम्बन्धो जहेव खीरोदयं मुणेदव्वो।
ण य होंति तस्स ताणि दु उवओगगुणाधिगो जम्हा।।५७।।

आहाहा! हरिगीत

इन भाव से संबंध जीव का, क्षीर जलवत् जानना।
उपयोग गुण से अधिक, तिससे भाव कोई न जीव का।।५७।।

उपयोग गुण से लिया है। भाषा देखी! ज्ञायकभाव - ऐसा नहीं, जो त्रिकाल उपयोग है। आहाहा! आहाहा! **उपयोग गुण से अधिक, तिससे भाव कोई न जीव का।**

टीका - जैसे जलमिश्रित दूध का,... पानी और दूध दोनों मिले हों, ऐसे मिश्रितरूप से। **जल के साथ परस्पर अवगाहस्वरूप सम्बन्ध...** पानी के साथ दूध को एकक्षेत्र में

अवगाह/ रहना / व्यापना, एकक्षेत्र में, ओहोहो! **जलमिश्रित दूध का, जल के साथ परस्पर अवगाह...** परस्पर अवगाह, देखा? जल और दूध तथा दूध और जल **परस्पर अवगाहस्वरूप सम्बन्ध होने पर भी, स्वलक्षणभूत दुग्धत्व-गुण के द्वारा व्याप्त होने से...** परन्तु दूध का जो गुण सफेद-श्वेत और मीठा, ऐसे गुण के कारण **दूध, जल से अधिकपने से प्रतीत होता है;...** दूध, पानी से अत्यन्त भिन्न प्रतीति में आता है। आहाहा! देखो न, यह भी दृष्टान्त... आहाहा! यह तो पाठ में ही है **खीरोदयं** पाठ में है, देखो! उस पाठ में दृष्टान्त नहीं था। यह पाठ है पूरा। आहाहा! क्या कहा? कि दूध और जल एक जगह में अवगाहरूप से रहने पर भी, दूध के लक्षण और जल के लक्षण अत्यन्त भिन्न है। दूध और जल एक जगह रहने पर भी, दूध का गुण और जल का गुण अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! कहाँ ले जायेंगे, यह देखो! सुनना!

इसलिए, जैसा अग्नि का उष्णता के साथ तादात्म्यस्वरूप सम्बन्ध है... अग्नि और उष्णता का उसरूप (तादात्म्यरूप) सम्बन्ध है। तद्रूप। **वैसा जल के साथ दूध का सम्बन्ध न होने से, निश्चय से जल दूध का नहीं है;...** वास्तव में वह जल, दूध का नहीं है। आहाहा!

इस प्रकार वर्णादिक... वर्ण-गन्ध-गुणस्थान-लब्धिस्थान ऐसे परिणामों के साथ। **वर्णादिक पुद्गलद्रव्य के परिणामों...** हैं। आहाहा! वहाँ यह कहा था न, पुद्गलद्रव्य के परिणाम से भिन्न हैं। आहाहा! उन **पुद्गलद्रव्य के परिणामों के साथ मिश्रित इस आत्मा का,...** आत्मा और भेद गुणस्थान आदि... आहाहा! एक जगह में, एक क्षेत्र में व्याप्य-व्यापकरूप से होने पर भी... आहाहा! **इस आत्मा का, पुद्गलद्रव्य के साथ परस्पर अवगाह-स्वरूप सम्बन्ध होने पर भी,...** भगवान ज्ञायकस्वभाव और ये रागादि, भेद आदि स्वभाव यह परस्पर अवगाह है, परस्पर अवगाह सम्बन्ध है; परस्पर स्वभाव सम्बन्ध नहीं। आहाहा!

स्वलक्षणभूत उपयोगगुण के द्वारा... जैसे उस दूधगुण द्वारा लिया था न, दूधपना गुण, उस द्वारा, दूधपना है न? दूधपना अर्थात् उसका गुण; इसी प्रकार इस आत्मा का पना, उपयोग गुण द्वारा। आहाहा! जानना-देखना जो उपयोग त्रिकाली है, उसे वर्तमान के उपयोग गुण द्वारा, आहाहा। **व्याप्त होने से आत्मा सर्व द्रव्यों से अधिकपने से (परिपूर्णपने से) प्रतीत होता है;...**

भगवान आत्मा इन गुणस्थान के भेदों, लब्धिस्थान के भेदों से भिन्न / अधिकपने प्रतीत होता है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव का अनुभव होने पर, वर्तमान उपयोग को त्रिकाली उपयोग के साथ सम्बन्ध करने पर... आहाहा! वह उपयोग अधिक (भिन्न) है। वह जीव का स्वभाव तथा भेद है, वह पुद्गल का स्वभाव है; जीव का नहीं। आहाहा! एक स्थान में रहे हैं, इतना कहा परन्तु एक भावस्वरूप नहीं, ऐसा है। जैसे दूध और जल एक स्थान में रहे होने पर भी उनके-दोनों के भावस्वरूप नहीं है। इसी प्रकार भगवान ज्ञानस्वभाव -भाव से और भेद आदि, पुद्गल आदि पुद्गल के स्वभावभाव से एकक्षेत्र में रहे होने पर भी भाव भिन्न है। आहाहा! **आत्मा सर्व द्रव्यों से अधिकपने से (-परिपूर्णपने से) प्रतीत होता है; इसलिए जैसा अग्नि का उष्णता के साथ तादात्म्यस्वरूप सम्बन्ध है, वैसा...** गुणस्थान, भेद, वर्णादि, लब्धिस्थान का आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं होने से। आहाहा! (और) **इसलिए निश्चय से वर्णादिक पुद्गलपरिणाम आत्मा के नहीं हैं।** ये गुणस्थान आदि जीव के नहीं हैं, लब्धिस्थान आदि जीव के नहीं हैं। आहाहा!

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)